15-17 नवम्बर 2006
जिनवाणी, 189

प्रतिक्रमण की उत्कृष्ट उपलब्धि- संलेखना

श्रीमती सुशीला बोहरा

बारह व्रतों की निर्मल आराधना करने वाला अपनी मृत्यु के क्षणों को भी साधनामय बना लेता है। अतः प्रतिक्रमण में १२ व्रतों के तत्काल पश्चात् संलेखना के पाठ को स्थान दिया गया है। संथारा और संलेखना के भेदों का प्रतिपादन कर विदुषी लेखिका ने संलेखना-विधि के पाँच सोपानों का वर्णन किया है। इन सोपानों के द्वारा संलेखना का स्वरूप पाठकों के लिए ग्राह्य है। *-सम्पादक*

संलेखना संथारा श्रावक के तीन मनोरथ में अन्तिम मनोरथ है। हर साधक की यह अन्तिम इच्छा रहती है कि उसे समाधिमरण प्राप्त हो। इस संलेखनापूर्वक समाधिमरण के पाठ को प्रतिक्रमण के चौथे आवश्यक में स्थान दिया गया है। प्रतिक्रमण करने का यह भी एक उच्च लक्ष्य है।

प्रतिक्रमण जैन साधना का प्राण तत्त्व है। यह साधक जीवन की एक अपूर्व क्रिया है, जिसे साधु-साध्वी आवश्यक रूप से करते हैं तथा श्रावक-श्राविका को भी आवश्यक रूप से करना चाहिये। यह वह पद्धति है जिसमें साधक अपने दोषों की आलोचना कर उनसे मुक्त होने का उपक्रम करता है। कुशल व्यापारी वही कहलाता है जो प्रतिदिन सायंकाल दिनभर के हिसाब को मिलाता है और अपने आय-व्यय को देखकर सोचता है कि कैसे अपव्ययों को रोककर आय को और बढ़ाया जाय। इसी प्रकार साधक भी प्रतिक्रमण के माध्यम से दिनभर की क्रियाओं का हिसाब देखता है कि मैंने अपने नियमों की परिपालना में कितनी दृढ़ता रखी है और कहाँ त्रुटि की है। पुनः त्रुटियों को न करने की प्रतिज्ञा के साथ उन गलतियों की आलोचना वह प्रतिक्रमण में करता है। सोचता है कि मैंने प्रमादवश कौनसे व्रतों का खण्डन किया तथा १८ पापों में से किनका सेवन किया, इस प्रकार भूलों का स्मरण कर वह उनका परिष्कार करने का प्रयास करता है। नित्य प्रतिक्रमण करने का परिणाम मृत्यु के समय में समभावों का रहना है। क्योंकि मृत्यु के क्षणों की भावना को ही सम्पूर्ण जीवन का व भावी जीवन का दर्पण माना गया है। अतः संलेखना- पाठ को प्रतिक्रमण में सम्मिलित कर साधक को प्रतिदिन अन्तिम मनोरथ याद दिलाकर जीवमात्र से क्षमायाचना करके मरण के समय इसे ग्रहण करने के लिए प्रेरणा दी गई है। इस पाठ का स्मरण भी प्रतिक्रमण में १२ व्रतों के तत्काल बाद रखा गया है, वह भी तीन बार जिससे अपने सभी व्रतों का पालन करते समय उसे ध्यान में रहे कि जीवन यात्रा का यह अन्तिम पड़ाव, शाश्वत शांति प्रदान करने वाला है।

संलेखना कब किया जाता है

संलेखना जीवन के अन्तिम समय में किया जाता है। जब साधक शारीरिक दृष्टि से इतना अशक्त हो जाय कि चलने-फिरने की क्षमता कम हो जाय, तप-त्याग करने की शारीरिक क्षमता समाप्त हो जाए, उठना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठना दूभर हो जाय तब संलेखना संथारा किया जाता है। असाध्य रोग होने पर भी संलेखना संथारा किया जा सकता है। शरीर पर ममत्व कम होना इसकी प्राथमिकता है। संलेखना आसन्न मृत्यु का स्वागत है। जो मृत्यु से घबराता है, जिसकी जीने की चाह समाप्त नहीं हुई है, विषयों के प्रति राग समाप्त नहीं हुआ है वह संथारा नहीं ले सकता। दूसरे इसकी प्रेरणा दे सकते हैं, लेकिन संथारा साधक की स्वयं की भावना होने पर ही किया जा सकता है, अथवा कराया जा सकता है।

चित्त की सरलता, मन की निर्मलता और आत्मा की पवित्रता लिये हुए जो साधक अहिंसा, संयम और तप की सुगन्ध में अपने जीवन को सुरभित करना चाहते हैं, वे मौत से डरते नहीं, अपितु मौत को गले लगाते हैं, मौत का हँसते-हँसते आलिंगन करते हैं। संलेखना मृत्यु को महोत्सव बनाना है।

संलेखना आत्महत्या नहीं

मरण की तलवार हमारे जीवन रूपी गर्दन पर प्रतिपल लटकती रहती है, आपातकालीन मरण भी हो सकता है, आत्महत्या के रूप में भी मरण हो सकता है, किन्तु वह बालमरण है। आत्महत्या पाप ही नहीं, अपितु महापाप है। जल में गिरकर, अग्नि में प्रवेश कर, विष-भक्षण कर, शस्त्र का प्रयोग कर आत्मघात करना आत्महत्या ही है। इसके विपरीत अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारों प्रकार के आहार का सर्वथा परित्याग कर जीवन को निर्मल बनाते हुए कषायों को कृश करना संलेखना है। संलेखना पूर्वक संथारा स्वीकार किया जाता है। आदमी आत्महत्या राग या द्वेषवश करता है लेकिन संथारा बिना किसी कामना के समाधिभाव से हँसते-हँसते स्वीकार किया जाता है।

आत्महत्या एकान्त में छिपकर की जाती है। इसमें कर्ता दुःखी एवं शोकग्रस्त होता है। वह होश-हवास के बिना, अविवेक अवस्था में आत्महत्या करता है। संलेखना में साधक की भावना शुद्ध, निर्मल व पवित्र होती है। इसमें साधक आत्मलीन होकर शरीर से ममत्व का त्याग करता है एवं सब जीवों से क्षमायाचना करता है। संलेखना एक व्रत है, जो जीवन के अन्तिम समय में सार्वजनिक रूप से गुरुजनों या बड़े श्रावक-श्राविकाओं के श्रीमुख से ग्रहण किया जाता है।

अतः संथारा आत्महत्या नहीं, अपितु आत्म-साधना की एक कनक कसौटी है। अनेक आचार्यों, ऋषि-मुनियों, कृष्ण महाराज की पटरानियों, श्रेणिक की रानियों, श्रावकों ने इस उच्च कोटि की साधना से जीवन को स्वर्ण सदृश निर्मल बनाया तथा सिद्ध गति प्राप्त की थी।

संथारा एवं संलेखना के प्रकार

जीवन की सांध्यकालीन आराधना पद्धति को बोलचाल की भाषा में संलेखना एवं संथारा के नामों से पहिचाना जाता है। संलेखना का तात्पर्य है कषायों एवं शरीर को कृश करना तथा संथारा वह अन्तिम बिछौना है जो साधक को तारने वाला होता है। संथारा के दो भेद हैं-१.सागारी संथारा (अल्पकालीन संथारा)- विकट परिस्थिति के उत्पन्न होने पर जब लगे कि गृहीत व्रतों का, आचार नियमों का निर्दोष पालन असंभव है, ऐसी अवस्था में श्रमण या त्यागी पुरुष अपने व्रतों की आलोचना करके प्रतिक्रमण करता है तथा आत्मशुद्धि हेतु शरीर का मोह छोड़कर उपसर्ग व परीषहों को समता भाव से सहता हुआ, मृत्यु से निरपेक्ष रहता हुआ संथारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण करता है। जैसे सुदर्शन श्रावक ने अर्जुनमाली के उपसर्ग को जानकर अथवा साधक रात को सोने से पहले यह संथारा कर लेता है। यह संथारा आगार/छूट के साथ किया जाता है। यदि इस स्थिति में प्राणान्त हो भी जाए तो सत्परिणामों में वह सद्गति का अधिकारी बन जाता है और उपसर्ग टल जाय तो संथारा पाल लिया जाता है। यह संथारा प्रतिदिन रात्रि में शयन के पूर्व भी किया जाता है।

२. मरणान्तिक संथारा- यावज्जीवन के लिये किया जाता है। यह तिविहार एवं चौविहार त्याग के साथ होता है। यह मृत्यु पर्यन्त स्वीकार किया जाता है।

संलेखना दो प्रकार की होती है- १. काय संलेखना २. कषाय संलेखना। काय संलेखना का अर्थ है काया को कृश करना और कषाय संलेखना का तात्पर्य है क्रोधादि कषायों को कृश करना। कषाय संलेखना अंतरंग संलेखना है, जिसके बिना काय संलेखना अधूरी है। काय संलेखना बाह्य संलेखना है।

पहले कषायों को त्यागना है, फिर काया को साधते हुए चित्त के भावों को निर्मलतम बनाना है। साधक सोचता है कि जन्म के साथ ही जब मृत्यु सुनिश्चित है तब मृत्यु से भयभीत क्यों? जीर्ण-शीर्ण देह या वस्त्र छोड़ने में डर कैसा? यह तो छोड़ना ही पड़ता है, तभी नूतन देह धारण की जा सकती है।

काय संलेखना क्रमशः की जाती है। जिसमें अनुक्रम से आहार, दूध, छाछ, कांजी अथवा गरम जल का भी त्याग करते हुए शक्ति अनुसार उपवास किया जाता है। तदनन्तर सर्व प्रकार के यत्नों से पंच नमस्कार मंत्र को मन में धारण करते हुए शरीर को छोड़ा जाता है। आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. ने निमाज में तेले की तपस्या के साथ संलेखना एवं फिर संथारा स्वीकार कर एक आदर्श उदाहरण समाज के सम्मुख रखा।

संलेखना विधि

संलेखनापूर्वक संथारा विधि बड़ी मनोवैज्ञानिक है। यह आत्मदमन की नहीं आत्मशोधन की विधि है। साधक के मनोबल, परिस्थिति, चिकित्सक, परामर्शक तथा पारिवारिक जनों की भावना को समझ कर सर्वप्रथम चतुर्विध संघ की अनुमति ली जाती है। संत-मुनिजन या महासतियाँ जी संघ प्रमुख की आज्ञा लेकर पंच परमेष्ठी और अपनी आत्मा, इन छहों की साक्षी से आलोचना, निन्दा और गर्हा करते हैं। इनमें मुख्य सोपान निम्नानुसार हैं -

संलेखना की तैयारी- मारणान्तिक संलेखना-संथारा के समय पौषधशाला का प्रतिलेखन कर, पौषधशाला का प्रमार्जन कर, दर्भ (घास, तृण) आदि का बिछौना बिछा कर, पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके पर्यंक तथा पद्मासन आदि आसन से बैठकर, दसों अंगुलियाँ सहित दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोले-

देव, गुरु को वन्दना- नमस्कार हो सिद्ध भगवन्त को, नमस्कार हो महाविदेह क्षेत्र में विचरने वाले सभी अरिहन्त भगवन्तों को, नमस्कार हो मेरे धर्माचार्य को।

तत्पश्चात् सभी साधु भगवन्तों को तथा समस्त जीव राशि से अपने द्वारा किये गये दोषों हेतु अपने द्वारा पूर्व में किये गये व्रतों में लगने वाले अतिचारों हेतु क्षमा माँगते हुए प्रतिज्ञा की जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिज्ञा- अब मैं सर्व प्रकार के प्राणातिपात का, मृषावाद का, अदत्तादान का, मैथुन और परिग्रह का त्याग करता/करती हूँ। इसी प्रकार क्रोध से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य तक १८ पाप रूप अकरणीय सावद्य योगों का त्याग करता/करती हूँ। जीवनभर के लिये इन पापों को तीन करण और तीन योग से न करूँगा, न करवाऊँगा और न करते हुए का अनुमोदन मन, वचन और काया से करूँगा। साथ ही अशन, पान, खादिम एवं स्वाद से संबंधित समस्त चार आहारों/तीन आहार (अशन, खादिम एवं स्वादिम) का त्याग करता/करती हूँ।

आलोचना- जीवन पर्यन्त मैंने अपने इस शरीर का पालन एवं पोषण किया है। जो मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, अवलम्बन रूप, विश्वास योग्य, सम्मत-अनुमत, आभूषणों की पेटी के समान प्रिय रहा है और जिसकी मैंने सर्दी से, गर्मी से, भूख से, प्यास से, सर्प से, चोर से, डाँस से, मच्छर, वात-पित्त-कफ एवं सन्निपात आदि अनेक प्रकार के रोग तथा आतंक से, परीषह और देव एवं तिर्यंच के उपसर्ग आदि से रक्षा की है, ऐसे शरीर का मैं अन्तिम समय तक त्याग करता हूँ। इस प्रकार शरीर के ममत्व को त्याग कर, संलेखना रूप तप में अपने आप को समर्पित करके एवं जीवन और मरण की आकांक्षा रहित होकर विहरण करूँगा/करूँगी।

अतिचार- मारणांतिक संलेखना के पाँच अतिचार हैं जो साधक एवं श्रमणोपासक के जानने योग्य हैं, आचरण करने योग्य नहीं हैं। अतः साधक चिन्तन करता है कि मैंने इस लोक के सुखों की इच्छा की हो, परलोक में देवता, इन्द्र आदि बनने की इच्छा की हो, बहुत काल जीने की इच्छा या रोग से घबरा कर शीघ्र मरने की इच्छा की हो, काम भोग की अभिलाषा की हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो।

इस प्रकार जीवन भर की अच्छी-बुरी क्रियाओं का लेखा-जोखा लगा कर अन्त समय में समस्त पापवृत्तियों का त्याग करना, मन-वचन और काया को संयम में रखना, ममत्व भाव से मन को हटाकर, आत्म-चिन्तन में लगाना, भोजन, पानी तथा अन्न सभी उपाधियों को त्याग कर आत्मा को निर्द्वन्द्व और निस्पृह बनाना संथारा का महान् आदर्श है, जैन धर्म का आदर्श है। जब तक जीओ विवेकपूर्वक धर्माराधन करते हुए आनन्द से जीओ और जब मृत्यु आ जाए तो विवेक पूर्वक धर्माराधन में आनन्द से ही मरो, यही पंडित मरण का संदेश है। यही प्रतिक्रमण का सर्वोच्च लक्ष्य है, सर्वोत्तम उपलब्धि है। प्रतिदिन प्रातः, सायं, पक्खी, चौमासी या संवत्सरी का प्रतिक्रमण करते हुए साधक के मनोबल को पुष्ट करते हुए संलेखना संथारा के लिये प्रेरणा मिलती रहती है। ऐसे साधक की भावना होती है कि मैं संलेखना का अवसर आने पर अनशनपूर्वक संलेखना-संथारा करता हुआ शुद्ध बनूँ तथा अन्त में मोक्ष का वरण करूँ।

आरम्भ परिग्रह छोड़कर, शुद्ध संयम लूँ धार।
करके शुद्ध आलोचना, करूँ संथारा सार।।
मोक्ष की है लगन पूरी, न कोई अन्य आशा है।
देह छूटे समाधि से, अंत शुभभाव चाहता हूँ।।

-अध्यक्ष, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
-जी २१ शास्त्री नगर, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org